कहानी

भाग-1

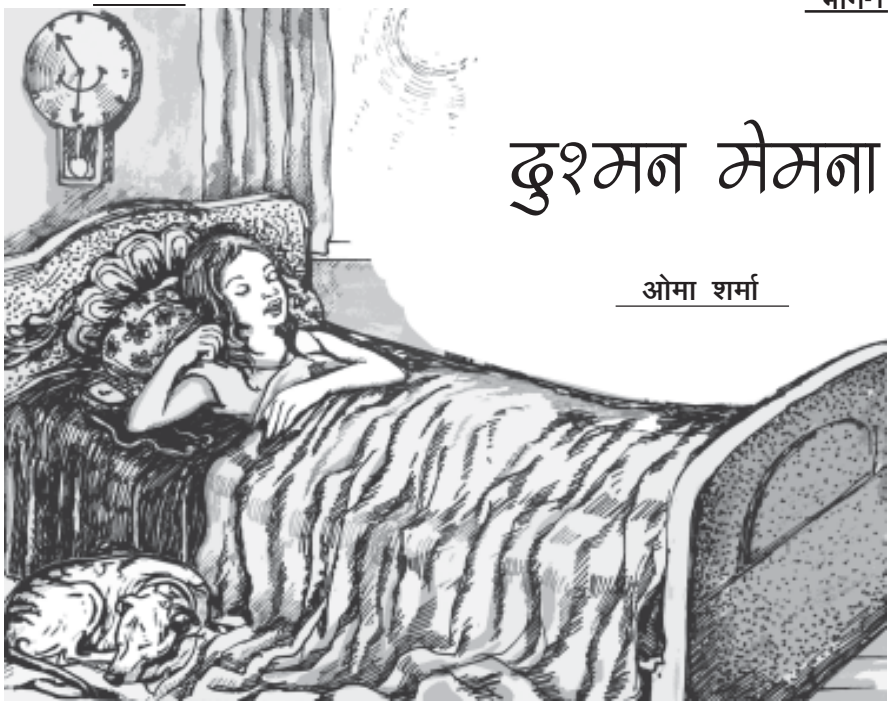

दुश्मन मेमना

ओमा शर्मा

वह पूरे इत्मीनान से सोयी पड़ी है। बगल में दबोचे सॉफ्ट तकिए पर सिर बेढंगा पड़ा है। आसमान की तरफ किए अधखुले मुँह से आगे वाले दाँतों की कतार झलक रही है। होंठ कुछ पपड़ा से गए हैं, साँस का कोई पता ठिकाना नहीं है। शरीर किसी खरगोश के बच्चे की तरह मासूमियत से निर्जीव पड़ा है। मुड़ी-तुड़ी चादर का दो-तिहाई हिस्सा बिस्तर से नीचे लटका पड़ा है। सुबह के साढ़े ग्यारह बज रहे हैं। हर छुट्टी के दिन की तरह वह यूँ सोयी पड़ी है जैसे उठना ही न हो। एक-दो बार मैंने दुलार से उसे ठेला भी है, "समीरा, बेटा समीरा, चलो उठो - ब्रेकफास्ट इज़ रेडी।" मगर उसके कानों पर जूँ नहीं रेंगी है। उसके मुड़े हुए घुटनों के दूसरी तरफ खुली त्रिकोणीय खाड़ी में किसी ठग की तरह अलसाए पड़े कास्पर (पग) ने ज़रूर आँखें खोली हैं मगर कुछ बेशर्मी उस पर भी चढ़ आई है। बिगाड़ा भी उसी का है।

वैसे वह सोती हुई ही अच्छी लगती है। उठ कर कुछ-न-कुछ ऐसा-वैसा ज़रूर करेगी जिससे अपना जी जलेगा।

नाश्ते में पराठे बने हों तो हबक देने की मुद्रा में यूँ 'ऑक' करेगी... कि नाश्ते में पराठे कौन खाता है। दलिया; नो। पोहा; मुझे अच्छा नहीं लगता। सैण्डविच; रोज़ वही। उपमा; कुछ और नहीं है। मैगी; ओके।

"मगर बेटा, रोज़ वही नूडल्स।"

"तो?"

"पेट खराब होता है।"

"मेरा होगा ना।"

"परेशानी तो हमें भी होगी।"

"आपको क्यों होगी?"

"कल आपको मायग्रेन हुआ था ना।"

"तो?"

"डॉक्टर ने मैदा, चॉकलेट, कॉफी के लिए मना किया है ना।"

"मैंने कॉफी कहाँ पी है?"

"नूडल्स तो मांग रही हो।"

"मम्मा!" वह चीखी।

"इसमें मम्मा क्या करेगी?"

"पापा, व्हाइ आर यू सो इरिटेटिंग?"

मैं इरिटेटिंग हूँ, यह बात अब मुझे परेशान नहीं करती है। नादान बच्चा है, उसकी बात का क्या। अकेला बच्चा है तो थोड़ा पैम्पर्ड है इसलिए और भी उसकी बातों का क्या।

वैसे उसकी बातें भी क्या खूब होती रही हैं। अभी तक।

हर चीज़ के बारे में जानना, हर बात के बारे में सवाल।

"पापा हमारी स्किन के नीचे क्या होता है?"

"खून।"

"उसके नीचे?"

"हड्डी।"

"हड्डी माने?"

"बोन।"

"और बोन के नीचे?"

"कुछ नहीं।"

"स्किन को हटा देंगे तो क्या हो जाएगा?"

"खून बहने लगेगा।"

"खून खत्म हो जाएगा तो क्या होगा?"

"आपको बोन दिख जाएगी।"

"उसको तो मैं खा जाऊँगी।"

"क्यों?"

"कास्पर भी तो खाता है।"

"वो तो डॉग है।"

"पापा, वो डॉग नहीं है।"

"अच्छा, तो क्या है?"

"कास्पर।"

"कास्पर तो नाम है, जानवर तो..."

"ओ गॉड पापा, यू आर सो..."

उसकी यही नॉनसेंस जिज्ञासाएँ हर रात को सुलाए जाने से पूर्व अनिवार्य रूप से सुनाई जाने वाली कहानियों का पीछा करतीं। मुझे बस चरित्र पकड़ा दिए जाते – फॉक्स और मंकी; लैपर्ड, लायन और गोट; पैरट, कैट, एलिफैंट

और भालू। भालू को छोड़कर सारे जानवरों को अँग्रेज़ी में ही पुकारे जाने की अपेक्षा और आदत। कहानी को कुछ मानदण्डों पर खरा उतरना पड़ता। मसलन, उसके चरित्र कल्पना के स्तर पर कुछ भी उछल-कूद करें मगर वायवीय नहीं होने चाहिए, कथा जितनी मर्ज़ी मोड़-घुमाव खाए मगर एकसूत्रता होनी चाहिए, कहानी का गन्तव्य चाहे न हो मगर मन्तव्य होना चाहिए, वह रोचक होनी चाहिए और आखिरी बात यह कि वह लम्बी तो होनी ही चाहिए।

आखिरी शर्त पर तो मुझे हमेशा गच्चा खाने को मिलता जिसे जीत के उल्लास में ऊँघते हुए करवट बदल कर वह मुझे चलता कर देती। मगर अब!

अब तो कितनी बदल गई है। कितनी तो घुन्ना हो गई है।

कोई बात कहो तो या तो सुनेगी नहीं या सुनेगी भी तो अनसुने ढंग से।

"आज स्कूल में क्या हुआ बेटा?" मैं जबरन कुछ बर्फ पिघलाने की कोशिश में लगा हूँ।

"कुछ नहीं," उसका रूखा दो-टूक जवाब।

"कुछ तो हुआ होगा बच्चे!"

"अरे! क्या होता?"

"मिस बर्नीस की क्लास हुई थी?"

"हाँ।"

"और मिस बालापुरिया की?"

"हाँ, हुई थी।"

"क्या पढ़ाया उन्होंने?"

"क्या पढ़ातीं? वही अपना पोर्शन।"

"निकिता आई थी?"

"आई थी।"

"और अनामिका?"

"पापा, व्हाट डू यू वांट?" वह तंग आकर बोली।

"जस्ट व्हाट्स हैपनिंग विद यू इन जनरल।"

"नथिंग, ओके।"

"आपके ग्रेड बहुत खराब हो रहे हैं बेटा।"

"दैट्स व्हाट यू वांट टू टॉक?"

"नो दैट इज़ ऑलसो समथिंग आई वांट टू टॉक।"

"कितनी बार पापा! कितनी बार!!"

"वो बात नहीं है, बात है कि तुम्हें हो क्या रहा है।"

"नथिंग।"

"तो फिर?"

"आई डोन्ट नो।"

"आई नो।"

और वह तमककर दूसरे कमरे में चली गई - मम्मी से मेरी शिकायत करने। मम्मी समीरा से आजिज़ आ चुकी है मगर ऐसे मौकों पर उसकी तरफदारी कर जाती है, मुख्यतः घर में शान्ति बनाए रखने की नीयत से वर्ना रिपोर्ट कार्ड या ओपन-डे के अलावा भी ऐसे नियमित मौके आते हैं जब उसे खून का घूँट पीकर रहना पड़ता है।

"ट्यूटर के बावजूद पिछली बार मैथ्स में चालीस में से बारह लाई थी। इस बार आठ हैं।"

"चलो, आगे मैथ्स नहीं करेगी।"

"ये आगे या अभी की बात नहीं है। जो क्लास में किया जा रहा है, किताब में है उसे पढ़ने-समझने की बात है।"

"ज्योग्राफी का भी वही हाल है।"

"क्या आठवीं की पढ़ाई इतनी मुश्किल हो गई है?"

"आगे क्या करेगी?"

"सबके बच्चे कुछ-न-कुछ कर लेते हैं, ये भी कर लेगी।"

"कैसे? सब इतना आसान है?"

"इतना मत सोचा करो!"

"लड़की का पिता होकर मैं नहीं सोचूँगा तो कौन सोचेगा? आगे कितना मुश्किल समय आने वाला है। अपने पैरों पर खड़े होने के लिए इसे कुछ तो करना पड़ेगा। हम हैं मगर हमेशा थोड़े रहेंगे। पता नहीं वे कौन माँ-बाप होते हैं जिनके बच्चे बोर्ड में टॉप करते हैं। आईआईटी-मेडिसिन करते हैं। अखबारों में जिनके सचित्र गुणगान होते हैं। यहाँ तो पास होने के लाले पड़ते हैं।"

"पास तो खैर हो जाती है।"

"हो जाती है, होम ट्यूशन्स के सहारे।"

"हमारे घरवालों को सरकारी स्कूल की फीस भारी लगती थी, यहाँ पब्लिक स्कूल में पढ़ते हुए होम ट्यूशन्स के बिना गुज़ारा नहीं।"

"तुम उसके मामले को अपनी तरह से क्यों देखते हो? व्हाई शुड योर अपब्रिंगिंग कास्ट शैडो ऑन हर लाइफ?"

मुझे निःशंक झिड़क दिया जाता है।

मैं स्वयं उस तरफ जाना नहीं चाहता मगर जिस तरह चीज़ें बिगड़ रही हैं, रहा भी नहीं जाता। ठीक है कि उसे सुख-सुविधाएँ नसीब हैं मगर बिगड़े तो नहीं। उस दिन कैमिस्ट्री की मिस रोडरिक्स ने बुलवा लिया। एक ज़माना था जब यह उनकी फेवरेट हुआ करती थी। उस दिन तो काट खाने को आ रही थीं।

"होम वर्क तो दूर, जर्नल तक पूरा नहीं करती है। क्लास में समीकरण-सन्तुलन खत्म हो गया है और यह आयरन का सिंबल 'आई' बना देती है। फिर आयोडीन कहाँ जाएगा?"

मुझे समझाते हुए ही मीरा समझदार और संयमी लगती है। जब खुद भुगतती है तो या तो उस पर हाथ उठा देती है या कुछ देर चीख-पुकार मचाकर मेरी नाकामी और तटस्थता को फसाद की जड़ करार देते हुए मुँह फुला लेती है। मैं तो रविवार को बमुश्किल उसका कुछ देख पाता हूँ, रोज़मर्रा में तो उसका काम मीरा ही सम्भालती है।

मगर मीरा भी कहाँ तक सम्भाले!

स्कूल तैयार होते समय रोज़ जूते और जुराबों की खोज मचती है क्योंकि गए रोज़ स्कूल से लौटकर बिना फीते खोले जूतों को जो उतारा तो एक कहीं फेंका, दूसरा पता नहीं कहाँ। पानी की बोतल हर हफ्ते के हिसाब से छूटती है। डब्बावाला लगा रखा है कि बच्चे को ताज़ा खाना मिल जाए मगर उसकी भी कोई कदर नहीं। किताबों को तो कबाड़े की तरह रखती है। अपन सेकण्ड-हैंड किताबों को भी अगले साल वालों को बढ़ा देते थे, ये नवम्बर-दिसम्बर तक नई किताबों के चिथड़े उड़ा देती है जबकि उनके कवर बाज़ार से चढ़वाए जाते हैं। ये कौन-सा ग्लोबलाइज़ेशन है कि हर निजी और मामूली चीज़ को आउटसोर्स कर दो - पहले बदलाव मगर बाद में एक मजबूरी के तहत!

वह सब भी ठीक है मगर बच्चा पढ़ तो ले! ये मैडम तो स्कूल से लौटकर घर में घुसी नहीं कि सीधे फेसबुक पर ऐसे टूटती है जैसे देर से पेशाब का दबाव लगा हो और घण्टों उसी पर लगी रहेगी। तब न खाने-पीने की सुध रहती है और न सर्दी-गर्मी लगती है। लोगों के बच्चे होते हैं जो स्कूल से आते ही सब काम छोड़कर होमवर्क में जुट जाते हैं, टीवी तक नहीं देखते और एक हमारी है...। जब खराब नम्बरों से ही डर नहीं तो होमवर्क

की क्या बिसात! मैं तो बस सुनता रहता हूँ कि इसके एक हज़ार से ज़्यादा फेसबुक फ्रेंड हैं। एक दिन बिना लॉग आउट किए कंप्यूटर बन्द कर दिया होगा। मीरा ने जब उसे चालू किया तो पुराना एकाउंट रीस्टोर हो गया। क्या-क्या तो अजीबोगरीब फोटो डाल रखे हैं। टेक्नोलॉजी ने तीतर के हाथ बटेर पकड़ा दी है। पता नहीं कितने और कहाँ-कहाँ के तो लड़के दोस्त बना रखे हैं। इस उम्र के लड़के भेड़िए होते हैं इसलिए लड़कियों को ही सम्भल कर चलना होगा। मगर यह तो रत्ती भर नहीं सुनती है। मैं उसके पास जाकर बैठूँ भी तो खट से कंप्यूटर को मिनिमाइज़ कर देगी या एस्केप बटन दबा देगी। न बेस्ट का मतलब पता है, न फ्रेंड का मगर बेस्ट फ्रेंड दर्जन भर हैं। मैं कुछ समझाने-चेताने लग जाऊँ तो अपनी ज़रा-सी 'हो गया' से मुझे झाड़ देगी। मुझे बहला-फुसलाकर एक ब्लैकबैरी हथिया लिया क्योंकि सभी फ्रेंड के पास वही है। मैंने सोचा इसके मन की मुराद पूरी हो जाएगी। अकेला बच्चा है, क्यों किसी चीज़ की कमी महसूस करे? आए दिन मोबाइलों के आकर्षक विज्ञापनों की कटिंग अपनी माँ को दिखाती थी। अक्सर मेरे मोबाइल को लेकर ही उलट-पुलट करती रहती थी, कुछ नहीं तो उस पर 'ब्रिक्स' या मेरे अजाने क्या-क्या गेम्स खेलती रहती। मगर आज तक हाथ मल रहा हूँ। उसके मोबाइल पर हर दम तो अब पासवर्ड का ताला जड़ा होता है। इसी से पता चलता है कि ज़रूर कुछ भद्दी हरकतों में शामिल होगी। सब कुछ पाक-साफ होता तो पासवर्ड की या उसके लिए इतना पज़ेसिव होने की ज़रूरत क्यों पड़ती?

उस दिन मैं ड्रॉइंगरूम में अकेला बैठा आईपीएल का मैच देख रहा था कि मीरा मेरे पास आई और चुप रहने का इशारा करके हौले-से बेडरूम में ले गई। समीरा सो चुकी थी। आज गलती से उसका मोबाइल डाइनिंग टेबल पर छूट गया था। सोते वक्त भी अमूमन वह उसे अपने तकिए के नीचे रखती है। साइलेन्ट मोड में। मुझे या मीरा को अधिकार नहीं है कि मोबाइल जैसी उसकी पर्सनल चीज़ों के बारे में ताक-झाँक या नुक्ताचीनी करें। आखिर इससे हमको क्या वास्ता कि वह कब, किससे, क्या बात करती है? बीबीएम यानी ब्लैकबैरी मैसेंजर सर्विस चालू करवा ली है। जितने मर्ज़ी मैसेज, फोटो या वीडियो भेजो। उस दिन के आए-गए सारे सन्देश पढ़ने में आ गए। यकीन नहीं हुआ कि अपना बच्चा ऐसी भाषा लिखता है। एक लफ्ज़ की स्पेलिंग ठीक नहीं थी। वासप, लोल, बीटीडब्लू, ओएमजी, टीटीवाईएल और जेके की भरमार थी। मीरा ने बताया कि ये सब क्रमशः व्हाट्स अप, लाफ आउट लाउड, बाइ द वे, ओ माई गॉड, टॉक टू यू लेटर और जस्ट किडिंग के लघु रूप हैं। खैर, यह सब तो चलो इस जनरेशन की व्याकरण है मगर इसके अलावा जो लिखत-पढ़त थी उसे

देखकर किसी को घटिया हिन्दी फिल्म के संवाद याद आ जाएँ। पहले फरज़ान नाम का कोई लड़का रहा होगा जिसके साथ इसका नाम जुड़ा था। थोड़े दिन पहले उसे चलता कर दिया है। आजकल दो और पकड़ लिए हैं; साहिल और साराँश। फेसबुक की अपनी प्रोफाइल पिक्चर के बारे में उनसे जबरन टिप्पणियाँ माँगती हुई। आधी बातों के सूत्र तो चित्र-संकेतों (स्माइलीज़) में धँसे होते हैं तो वैसे ही कुछ पल्ले नहीं पड़ता। विषय के तौर पर हिन्दी – अवर मदर टंग, यू नो – बहुत बोरियत भरी फालतू और मुश्किल लगती हो लेकिन सन्देशों की अदला-बदली के बीचों-बीच उसकी चुनिन्दा देसी गालियों का प्रयोग सारे करते हैं। जैसे यह कोई फैशन या जमानेसाज़ होने की बात हो।

एक बार की बात है जब नवी-मुम्बई के रास्ते शायद मानखुर्द में किसी जगह सुअरों को ढूँढ़-ढूँढ़कर कुछ खाते देखा था। बस शुरू हो गई।

"पापा, पिग्स क्या खाते हैं?"

"पॉटी," मैंने एक नज़र फिराकर स्टियरिंग पकड़े ही कहा।

"छी! क्यों?" एसी गाड़ी में बैठे हुए ही उसने उल्टी करने की मुद्रा बनाई।

"वो उनका खाना होती है, उसमें उनको बदबू नहीं आती है।"

"उस पॉटी को खाकर जो पॉटी करते हैं उसे भी खा जाते हैं?"

इस पुत्री-पिता संवाद की एकमात्र गवाह श्रीमती मीरा जोशी ने ऐन इस बिन्दु पर अपनी सख्त आपत्ति दर्ज़ करते हुए 'स्टॉप इट' कहा तो कुछ पलों के लिए उसका सवाल एक नाजायज़ सन्नाटे में टँगा रहा।

"नहीं," मैंने हौले-से 'ऑब्जेक्शन ओवररूल्ड' की मुद्रा में जवाब दिया।

"सूचनाधिकार के युग में मैडम आप सवालों से बच नहीं सकतीं। क्यों पापा?"

"अरे, अपनी पॉटी कोई नहीं खाता। गूगल पर सर्च करके देखना - एनिमल्स हू ईट देअर ओन शिट - शायद होते

भी हों...।" मैंने बात बिगड़ने से पहले बात को रफा-दफा किया।

कोई यकीन करेगा कि दो साल पहले तक ऐसी मासूम शरारती लड़की के भीतर अचानक क्या कचरा घुस गया है कि कुछ समझ में नहीं आ रहा है। कुछ बताती भी तो नहीं है – जैसे हम इस लायक ही न हों। माँ-बाप अभी न रोकें तो पूरा बिगड़ने में कितनी देर लगती है? पता नहीं और बिगड़ने को क्या रह गया है। मोबाइल के म्यूज़िक में फ्लोरिडा, ब्रूनो मार्स, एमेनिम, रिहाना, एनरिके, जस्टिन बीवर, एकॉन और पता नहीं किन-किन फिरंगी रैंक-चन्दों को भर रखा है। जब देखो तब ईयर-प्लग चढ़ाए रहती है। बेबी, टुनाइट आयम लविंग यू, लिप्स लाइक शुगर, डीजे गॉट अस फॉलिंग इन लव अगेन, इफ यू आर सेक्सी एण्ड यू नो क्लैप योर हैंड – को सुनने का मतलब क्या है। ज़रा कुछ बोलो तो कहती है इससे एकाग्रता बढ़ती है। एक दिन मैंने घेर-घार के पूछ लिया तो कहती है इनका कोई मतलब नहीं है। ये तो म्यूज़िक है। कोई भला आदमी बताए तो मुझे कि इसमें काहे का म्यूज़िक है? सारे गानों में वही एक-सा हो-हल्ला। कोई अल्फाज़ नहीं जो दिल पर ठहरे। कोई सुर नहीं, सब शोर ही शोर।

और देखो, फिर भी किस धड़ल्ले से कह देती है कि जब मुझे कुछ अता-पता ही नहीं है तो फिर मैं ऐसी इरिटेटिंग बातें क्यों करता हूँ।

सुबह की सैर पर रोज़ मिलने वाले एक परिचित बता रहे थे कि गए शुक्रवार की दोपहर को यह 'ब्लू हैवन' के लाउंज में किसी हमउम्र लड़के के साथ एक कोने में चाइनीज़ खा रही थी। मैंने घर पर पूछा तो मीरा ने बताया कि स्कूल से आने के बाद यह 'क्रॉसवर्ड' बुक स्टोर पर कुछ सहेलियों से मिलने की कहकर गई थी। उसने वहाँ ड्रॉप भी किया था। अब कहाँ 'क्रॉसवर्ड' और कहाँ 'ब्लू हैवन'? जब घर से जाती है तो कतई नहीं चाहती कि हममें से कोई उसे फोन करे। करो तो अक्सर उठाएगी नहीं। बाद में मोबाइल के साइलेन्ट मोड या टैक्सी की खड़-खड़ का बहाना कर देगी।

अपनी तरफ से प्यार-पुचकार के खूब आज़माइश कर चुका हूँ मगर नतीजा? वही ढाक के तीन पात। उस रोज़ बेचैनी के कारण नींद खुल गई। बिना रोशनी किए समीरा के कमरे की तरफ गया तो देखता हूँ

मैडम बीबीएम करने पर लगी हैं। रात के ढाई बजे! आग लग गई। रहा नहीं गया। बस हाथ उठने से रह गया। समझ में आ गया कि हम लोग के लाड़-प्यार का ही नतीजा है यह सब। पता नहीं रात में कब तक यह सब करती है, तभी तो रोज़ सुबह उठने में आना-कानी करती है। बस, मैंने मोबाइल ले लिया। मगर इसकी हिमाकत तो देखो! कहती है मैं उसका मोबाइल नहीं देख सकता! क्यों? टेल मी! व्हाट इज़ देअर इन दैट व्हिच आई - हर फादर - कैन नॉट सी? मीरा बीच में आ गई सो उसे अपना कोड-लॉक डालने दिया। किस दबंगी से तो मुँह लग लेती है जबकि सेब काटने की अकल नहीं है। उस दिन काटा तो कलाई में चाकू घुसेड़ दिया।

मुझे एक डर यह भी लगता कि जिन लड़कों के साथ यह बीबीएम पर रहती है, उनसे कहीं स्कूल के बहाने मिलती-जुलती तो नहीं है? इस उम्र का आकर्षण दिमाग खराब किए रहता है। मैंने कई दफा, स्कूल यूनिफॉर्म में, इसकी उम्र की लड़कियों को मरीन ड्राइव की पट्टी और आइनॉक्स के मॉर्निंग शोज़ से छूटते देखा है। कुछ समाजशास्त्री किस्म के लोग तो इन्हें 'टीनेज कपल' तक कहते हैं। इनके माँ-बाप यकीन करेंगे कि उनके पिद्दी से होनहार क्या गुल खिला रहे हैं? सीक्रेट वीडियो कैमरे से रिकॉर्डिंग करके आए दिन एमएमएस सरक्युलेट होते रहते हैं। एक्सप्रेस में ही पिछले दिनों रिपोर्ट थी कि नवयुग पब्लिक स्कूल की वह लड़की जिसने नौवीं क्लास में लुढ़क जाने के बाद खुदकुशी कर ली थी, पोस्टमॉर्टम के बाद पता चला कि गर्भ से थी। वह भी तो अपने माँ-बाप की इकलौती बच्ची थी। उसके माँ-बाप ने भी हमारी तरह पैदाइश-परवरिश के चक्कर में डॉक्टरों की दौड़-धूप की होगी, बढ़िया-से स्कूल में दाखिला दिलाने के लिए खूब ऊपर-नीचे हुए होंगे, स्कूल के ओपन डेज़ पर सब काम छोड़कर टाइगर मदर्स के बीच बारी आने पर क्लास टीचर के सामने किसी प्रविक्षार्थी की तरह डरे-सहमे पेश होते रहे होंगे, बुखार न उतरने या अज्ञात कारणों से पेचिश हो जाने पर दवाइयों के अलावा नज़र उतारकर तसल्ली की साँस भरी होगी, मध्य रात्रि में उसके कमरे में हौले-से रोशनी करके मच्छरों को चैक किया होगा...।

या फिर, इस दबड़ेनुमा फ्लैट में वे कभी सोच सकते थे कि उनको कोई कुत्ता (कास्पर को कुत्ता कहने में उन्हें समीरा के नाम का झटका लगा) भी पालना मंज़ूर होगा? जब कास्पर नहीं था, यानी तीन बरस पहले, तब हर गन्दे-शन्दे पिल्ले को खेलने के लिए उठा लाती। एक बादामी रंग की बिल्ली का छौना था जिसे उसकी माँ ने छोड़ दिया था या छूट गया था। उसे हमारे घर में शरण मिली। मगर तीन रोज़ में ही जब उसने सोफे के ऊपर, टेबल के नीचे और फ्रिज के पिछवाड़े को तरोताज़ा

होने का ज़रिया बनाया तो मैंने भी हाथ खड़े कर दिए। दो दिन तक तो वह छौना दिखता रहा -- कभी कार पार्किंग के पास तो कभी जेनसेट के पास। मगर तीसरे दिन वह नदारद था। किसी अभियान की तरह मुझे साथ लेकर उसकी ढुँढ़वायी मची।

"छोड़ बेटा, लगता है उसे किसी जानवर ने मार खाया है," कोशिश नाकाम रहने पर मैंने उसे समझाया।

"पापा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वह एक रात में पूरी बिल्ली बन गया हो? मैंने उसी कलर की बिल्ली बाजू वाली बिल्डिंग में देखी है।"

उसे किसी भी सूरत में छौने का न होना या किसी जानवर द्वारा मार डालने का गल्प मंज़ूर नहीं था।

"वो तो इतना छोटा था, उसे कोई क्यों मारेगा भला!"

"हाँ, यह तो हो सकता है। कई बार ऐसा हो जाता है। इस बार भी ऐसा ही हुआ है। अब घर चलें?" मुझे भरसक उसके साथ होना पड़ा।

इसी कोमल दीवानगी को देखकर ही तो कास्पर को लाना पड़ा। नामकरण के लिए भी कुछ मशक्कत नहीं करनी पड़ी क्योंकि महीने भर के जीव को पहली बार गोदी में दुलारते हुए उसके मुँह से निकला था, "पापा, काश इसके

'पर' होते, ये उड़ सकता!" और नाम हो गया कास्पर!

गूगल के परोसे सारे फिरंग नाम धरे रह गए।

मगर क्या हुआ?

सिर्फ पागलों की तरह खेलने-पुचकारने के लिए है कास्पर। एक भी दिन उसे रिलीव कराने नहीं ले जाती है। अखबार में अक्सर पढ़ता हूँ कि पेट्स बहुत बढ़िया स्ट्रेस-बस्टर होते हैं। खाक होते हैं। मेरा तो स्ट्रेस बढ़ता ही जा रहा है।

***

शाम को घर लौटा तो मीरा का

मुँह कुछ ज़्यादा ही उतरा हुआ था। थोड़े-बहुत मूड स्विंग्स तो उसे होते ही रहते हैं तो पहले तो मैं चुप्पी लगा गया। एक चुप्पी लाख सुख की तर्ज़ पर। औरतें किस बात पर कैसे रिएक्ट कर जाएँ कोई बता सकता है? मगर कुछ देर बाद उसने खुद ही आड़े-टेढ़े रास्ते पकड़ने शुरू कर दिए।

"आज इसके स्कूल गई थी," उसने यूँ कहा जैसे उस हवा के साथ अदावत हो जो मैं ढीठता से ले रहा था।

हवा में सन्नाटा था मगर यह सन्नाटा उस निस्तब्धता से हटकर था जो पति-पत्नी के खालिस अहमों की नीच टकराहट से किसी फाँस की तरह रह-रहकर चुभता है। समीरा का अजीबो-गरीब ढंग से फिसलता रवैया अब हम दोनों का, शुक्र है, साझा उद्यम-सा बन गया है।

अपने दफ्तर के काम की थकान की ओट में रहकर मैंने उसकी बात पर कुछ नहीं कहा तो उसने जोड़ा, "गई नहीं, इसकी टीचर ने बुलाया था।"

उसके कहे के आगे-पीछे एक बोझिल निर्वात तना खड़ा था।

"क्या हुआ? कोई खास बात?"

किसी डराती आशंका से मुठभेड़ की तैयारी में मेरा लरजता आत्मविश्वास जागृत-सा होने लगा।

"इट्स गेटिंग डेंजरस," उसकी भंगिमा पूर्ववत पथरीली थी।

"व्हाट? व्हाट हैपन्ड! क्या हुआ?"

"इसने स्कूल में खुद को मारने की कोशिश की..."

"अच्छा, कैसे?" बढ़ती बदहवासी तले मेरा तेवर तटस्थ होने लगा।

"पेन की नोक चुभाकर..."

मेरे चेहरे से जब जिज्ञासा सूखकर बदरंग हो गई तो उसने आलापना शुरू कर दिया... इतनी तो अच्छी टीचर हैं वह इसकी... केमिस्ट्री की मिस उमा पॉल बर्नीस। यूपीबी। कुछ दिन पहले तक वह इसकी फेवरेट थीं। अब इसकी दुश्मन हो गई हैं। और होंगी क्यों नहीं? दो-चार बिगड़ैल लड़कियों के साथ पीछे की सीटों पर बैठकर ये गन्दी-गन्दी पर्चियाँ पास करते थे। आज टीचर ने पकड़ लिया। सबसे ज़्यादा इसकी लिखावट में मिलीं! मैंने खुद अपनी आँखों से देखी हैं। टीचर का नाम 'अगली पगली बिच' कर रखा था। बतौर सज़ा इसे क्लास के बाहर पाँच मिनट खड़ा कर दिया। दो और लड़कियाँ थीं। कौन बर्दाश्त करता? इसमें इसे बड़ी हेठी लगी। बस, अन्दर आने के बाद अपनी हथेली पंक्चर कर ली। डेस्क पर खून की धार गिरी तो हल्ला मचा। मिस बर्नीस घबरा गईं और मुझे फोन करके बुलवाया। मैंने टीचर से माफी माँगी और रिआयत माँगकर इसे घर ले आई। घबरायी हुई थी या क्या, मगर इसका शरीर तप रहा था सो मैंने एक क्रोसिन देकर सुला दिया। तब से ही सोई पड़ी है। तुम मत कुछ कहना।

अवसन्न-सा होकर मैं मीरा को देखता हूँ। उसके होंठ खुश्क हुए जा रहे थे। पिछले दिनों लगातार तनावग्रस्त रहने से उसके भीतर का सब कुछ निचुड़-सा गया है। कब से वह खुलकर नहीं हँसी होगी। कभी ये तो कभी वो, कोई-न-कोई पचड़ा लगा रहता है। इस हालत में वह बोतल से जल्दी-जल्दी पानी के घूँट ऐसे निगलती है कि लगता है, बोतल डरावनी हिचकियाँ ले रही है। एक बोझिल अवसाद किसी घुलनशील द्रव्य की तरह उसकी शिराओं में उतर गया लगता है। हम दोनों के बीच इन दिनों एक मृतप्राय निष्क्रियता घर किए बैठी रहती है।

मुझे पता है कि इस समय उसका मनोबल बढ़ाते हुए मैंने उसे सहला-सा दिया तो वह ढहने लग पड़ेगी। इसलिए ऊपरी तौर पर ही उकसाता हूँ।

"इन टीचर्स को तो बात का बतंगड़ करने में मज़ा आता है। माँ-बाप की परेड निकालने में चुस्की लगती है। इसकी उम्र के सारे बच्चे शरारती होते हैं और जो नहीं होते हैं तो उन्हें डॉक्टर को दिखाना चाहिए। रादर दैन बीइंग ए स्पोर्ट दे आर देअर ऑनली टू किल द फ्लैमबॉएंस ऑफ चिल्ड्रन। और ये सब उस स्कूल का हाल है व्हिच इज़ सपोज़्ड टू बी अमंग द बेस्ट इन मुम्बई। पिटी। बाइ द वे, आज डिनर में क्या है?"

गृहस्थी का मेरा यह पन्द्रह साल का अनुभव है कि खाने-पीने के स्तर पर उतरते ही बहुत सारे छुटपुट मसले अपने आप हवा हो जाते हैं।

मगर मेरे इस प्रोप-अप से वह किंचित और जड़वत हो जाती है और पास में रखी समीरा की नोटबुक का आखिरी पन्ना खोलकर मेरी तरफ बढ़ा देती है।

"व्हाट!"

"सुसाइड नोट!!"

एक सदमा किसी संगीन-सा मुझमें डूब गया है।

आधा भरा हुआ पेज। उपनाम सहित ऊपर एक तरफ लिखा हुआ पूरा नाम। दूसरे कोने में साल सहित लिखी जन्मतिथि। उसके समानान्तर ठीक नीचे डेट ऑफ डेथ, जिसके सामने हाइफन लगाकर सिर्फ वर्ष लिखा है – वही जो चल रहा है। बस, 'फैसले' के दिन की तारीख भरी जानी है। दो-तीन जगह शब्दों की मामूली काटपीट वर्ना सब कुछ एक उम्दा कम्पोज़ीशन की तरह सोच समझकर लिखा गया पर्चा:

मैं जीना चाहती थी। मैंने कोशिश भी करी मगर मैं हार गई। क्या फायदा ऐसे जीकर जिसमें आप अपनी मर्ज़ी से जी नहीं सकते। मेरे पापा को तो कभी मुझसे ज़्यादा मतलब रहा नहीं। मम्मी भी वैसी हो गई हैं। सेल्फ ऑबसैस्ड। दोनों को मेरी किसी खुशी से मतलब नहीं। मोबाइल तक छीन लिया। मैं दोस्तों के यहाँ स्लीप-ओवर के लिए नहीं जा सकती हूँ। उन सबको

कितनी फ्रीडम है। मुझे तो बस पढ़ाई-पढ़ाई करनी होती है। पढ़ाई से मुझे चिढ़ है। मगर किसी को उसकी परवाह नहीं। मैं जानती हूँ कि ये सब जान लेने की पूरी वजह नहीं है मगर मेरे पास जीने की भी तो वजह नहीं है। अनामिका, यू आर माई BFF। आई विल मिस कास्पर।

पढ़ते-पढ़ते मेरे भीतर हाहाकार मचता एक दृश्य उभर रहा है – पहले उसके कमरे के दरवाज़े पर समीरा-समीरा नाम की घनघोर तड़ातड़ थापें, फिर पूरी वहशत के साथ दरवाज़े को धक्के से तोड़ना, बिस्तर के पास औंधी पड़ी कुर्सी, कमरे के बीचों बीच सीलिंग फैन से स्थिर लटका उसका कोमल बेजान शरीर, बेकाबू होकर सिर पटकती दहाड़ मारती मीरा, मिलने वालों का जमघट,... पुलिस... पोस्टमॉर्टम...

"ड्राफ्टिंग तो अच्छी है – कितनी कम गलती हैं।"

एक चुहुल के साथ जैसे मैं उस भयानक दुःस्वप्न से उबरने की चेष्टा करता हूँ। सहारे के लिए मीरा की तरफ फीकी मुस्कान छोड़ता हूँ मगर सब बेअसर।

उसकी आँखों में एक गहरा निष्ठुर अजनबीपन तिर आया है। जीवन के हासिल को जैसे कोई बेधमके चट कर गया हो। किसी पहाड़ी ढलान से उतरती गाड़ी के जैसे ब्रेक फेल हो गए हों और सामने एक डरावने, चिंघाड़ते अँधेरे के सिवा कुछ बचा ही न हो... क्या कोई जीवन इतनी बेवजह, कोई चेतावनी या मौका दिए बगैर इतनी आसानी से नष्ट किया जा सकता है? और क्यों...?

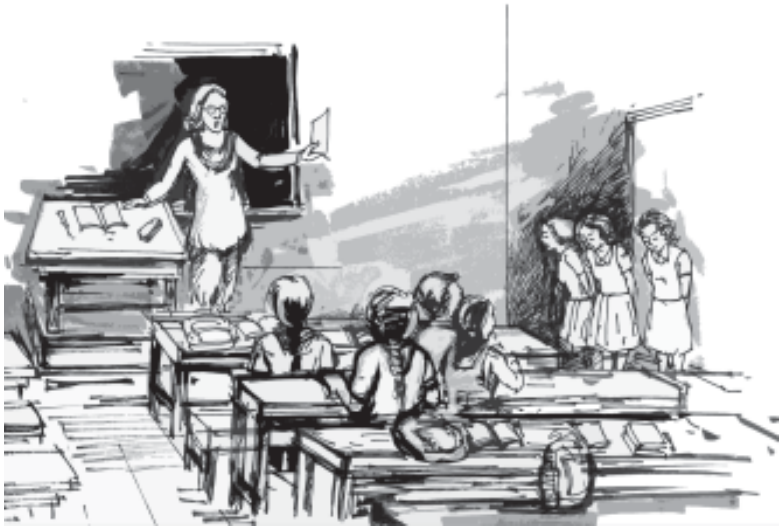

"सारी टीचर्स और क्लास को इसने डिक्लेयर कर रखा है इसके बारे में..."

वह अपनी मुर्दनी के भीतर से किसी कड़वे गिले की उल्टी करने को हो आई है।

मेरी बोलती बन्द है।

"जिस रोज़ तुमने इसका मोबाइल लिया था उस रात भी इसने किचिन में कलाई काटने की कोशिश की थी जिसे सेब काटते वक्त लगे कट का नाम दे दिया..."

उसका अवसाद किसी आवेग मिश्रित उबाल की शक्ल लेने को है।

"आई डोंट बिलीव दिस – ऐसा कैसे हो सकता है..."

पहली दफा मैं मामले की संगीनियत महसूस कर रहा हूँ – सामने कोंचते मनहूस घिनौने तथ्यों के कारण भी और अपने यकीन के बेसहारा और तिलमिलाकर अपदस्थ होने के कारण भी।

"हाथ कंगन को आरसी क्या," अधूरा मुहावरा कहकर वह मुझे सोती पड़ी समीरा के पास ले जाती है और हथेली को हौले-से खोलकर वह बिन्दु दिखाती है जो एक बुज़दिल कोशिश का सरासर प्रमाण है।

यानी उस नामालूम रोज़ - और आज नीमरोज़ - यह हुआ नहीं मगर बा-खूब हो सकता था कि आप अपने जीवन की चकरघिन्नी में शामिल होने के लिए आदतन अल्साए उठते और 'ब्लेड टू डैथ' जैसे डॉक्टरी निष्कर्ष तले ज़िन्दगी भर के लिए हाथ मलते रह जाते।

गॉश!

"मैं पता करके एक काउंसलर से आज मिल भी आई। उसके मुताबिक मामला सीरियस है। हम कोई और चांस नहीं ले सकते हैं..."

यानी जो चीज़ पहले टल गई, आज टल गई, वह हो सकता है कल न टल पाए!

मैं एक आवेग से भर उठता हूँ।

"कोई मुझे बताए तो सही कि हम क्या ज़ुल्म करते हैं इस पर! स्कूल के दिनों को छोड़ मैडम अपनी मर्ज़ी से दोपहर तक उठती हैं। रात को सोने से पहले ब्रश करना आज तक गवारा नहीं हुआ है। नतीजा, हर महीने दाँतों में कोई-न-कोई कैविटी लगानी-बदलवानी पड़ती है। उठते ही नेट और फेसबुक। मोबाइल तक में फेसबुक एलर्ट्स हैं। पहले बास्केटबॉल या साइकलिंग तो कर लेती थी लेकिन अब वह भी नहीं। गेम्स के नाम पर नेट या फिर रोडीज़। हर किताब और खाना बोरिंग लगता है। टॉयलेट जाने का कोई नियम-क्रम आज तक नहीं बना। मैं तो कहता हूँ वह सब भी ठीक है। कर लो। मगर यह क्या कि स्कूल के जर्नल तक को पूरा करने की फुर्सत नहीं है आपको। फिसड्डी होते चले जाने का अफसोस तो दूर, अहसास तक नहीं है। एक हमारा टाइम था जब हमारे बाप को ये तक पता नहीं होता था कि पढ़ कौन-सी क्लास में रहे हैं – सबजेक्ट्स क्या ले रखे हैं..."

"सत्या, प्लीज़। डोन्ट गेट इनटू दैट। तुम अपने टाइम से औरों को जज (मतलब आँकने से है) नहीं कर सकते..."

वह अपनी पस्त मानसिकता में रहते हुए भी एक परिचित गर्म नश्तर मेरे पनपते गुस्से पर रख देती है। वैसे सही बात तो यह है कि समीरा को लेकर जितनी दौड़-भाग, मेहनत-मशक्कत वह करती है, मैं नहीं। परिवार बड़ा था इसलिए बँटवारे में जो हिस्सा मिला उससे अपनी स्वतंत्र ज़िन्दगी नहीं चल सकती थी इसलिए अपना काम शुरू किया। काम एकदम नया। अनलिस्टड कम्पनियों के शेयर बेचने का... वे जो दसियों बरस से धन्धा तो कर रही हैं मगर जिनकी बैलेंस शीट को देखकर बैंकों और आम निवेशकों के मुँह में पानी नहीं आता है... जो अपने इवेंट मैनेजर अफोर्ड नहीं कर सकती हैं... कोई उड़ीसा में बॉक्साइट का उत्खनन करती है तो कोई उत्तरांचल में छोटे स्तर पर पन-बिजली बना रही है। ज़्यादातर कैश स्टार्व्ड इकाइयाँ। बड़ा काम नहीं है मगर आज बाँद्रा में सिर ढँकने को अपनी छत है। रात का खाना रोज़ घर पर होता है। किसके लिए किया यह सब? स्टेट बैंक की चाकरी में या तो मैनेजरी में फँसा रहता या आए रोज़ 'रूरल' कर रहा होता। मीरा क्या जानती नहीं है यह सब। बैंकों के डेबिट-क्रेडिट में चौदह साल खटाए हैं उसने। तीन साल पहले वी.आर.एस. लिया... कि समीरा पर पूरा ध्यान देगी। दिया भी खूब। कभी अलाँ-फलाँ कम्पाउंड की वेलेंसी निकालने का तरीका समझ-समझा रही है तो कभी फैक्टराइज़ेशन में जान झोंके पड़ी है; कभी ऑस्ट्रेलिया में होने वाली बारिश और मिट्टी के वर्गीकरण की सफाई कर रही है तो कभी सवाना की जलवायु को फींच

रही होती है।

"अपने टाइम से जज नहीं करूँ तो क्या इसके टाइम से जज करूँ? गाँव देहात तक के बच्चे एक-से-एक इंजीनियरिंग-मैनेजमेंट में जा रहे हैं, बिना किसी खानदानी सहारे के नौजवान लड़की-लड़के एक-एक विचार को तकनीकी में पिरोकर नए-नए उद्यम खड़ा कर दे रहे हैं... बिना मेहनत के हो रहा है यह सब... बिल गेट्स और आइंस्टीन की नज़ीरों से सांत्वना लेनी है तो बस यही कि उन्होंने भी अपने स्कूलों में कोई किला फतह नहीं किया... हद है..."

"सत्या लिसन," ज़रा रुक वह फिर बोली, "अभी यह सब कहने-सोचने का वक्त नहीं है। अभी तो हमें बस यह देखना है कि कैसे यह रास्ते पर आ जाए... आए रोज़ तरह-तरह की खबरें पढ़कर आजकल मेरा तो कलेजा बैठने लगा है।"

मुझे अपनी गलती का अहसास होता है।

कितने कम लफ्ज़ों के सहारे दर्द और परवाह अपने गन्तव्य पर जा लगते हैं!

कल-परसों ही तो खबर थी... भारत में खुदकुशी करने वाले बच्चों-विद्यार्थियों की तादाद पिछले पाँच बरसों में दो गुनी हो गई है। अकेली मुम्बई में हर वर्ष सौ से ज़्यादा स्कूली बच्चे अपनी जान ले लेते हैं। किसी विषय या क्लास में नहीं हुए पास तो जीवन समाप्त! डेढ़ करोड़ की आबादी के महानगर में सौ की संख्या मायने न रखती हो मगर सोचो, सौ से ज़्यादा परिवारों पर हर वर्ष क्या बीतती होगी। भोली, खिलखिलाती मासूम तस्वीरों के नीचे अखबार के श्रद्धांजली वाले पन्ने पर, कैसी टीस भरती, हाथ मलती ऋचाएँ सिरायी जाती हैं! कैसे अनवर्त्य (इर्रिवरसिबल) ढंग से कुछ ज़िन्दगियाँ

हमेशा के लिए बदल जाती हैं! आसमान तोड़ आर्तनादों को भी सांख्यिकी कितनी अन्यमनस्कता से अनसुना रख छोड़ती है!

क्या हम भी उन्हीं में शामिल होने की कगार पर हैं?

मैं समीरा के पास जाकर हौले-से लेट जाता हूँ। कुछ बरस पहले उसे लुभाने का मेरे पास एक रामबाण था - उसकी कमर खुजला कर।

"पापा खुजली नहीं हो रही थी... आप करने लगे तो होने लगी। क्यों?" किसी सुकून से लबरेज़ होकर वह कह उठती।

"ये पापा का जादू है।"

किसी अपने को सुख देना भी कितना सुख देता है।

"बताओ ना पापा, क्यों?"

"अरे तुम 'टेल मी व्हाई' में देख लेना... इट्स पापाज़ मैजिक..."

ऐसी कौतुक जीतें मुझे वास्तविक आह्लाद से भर देतीं।

मगर इन दिनों उसके ऊपर मनुहार का हाथ भी मैं तभी रख पाता हूँ जब वह बेसुध सो रही हो वर्ना नीमहोशी में भी वह 'पापा डोंट इरिटेट मी' की चीख से मुझे दफा कर देती है।

आज भी कर दिया।

मगर उसकी दुत्कार को जज़्ब करने के मेरे नज़रिए में फर्क था।

थोड़ी देर बाद वह उठती है और बिना कुछ बोले बाहर सोफे पर जाकर लेट जाती है।

मैं मीरा से उसकी पसन्द के सारे वाहियात खाने - नूडल्स-बर्गर वगैरा बनाने की ताकीद करता हूँ।

मीरा ने पहले ही पास्ता बना रखा है।

(...जारी)

ओमा शर्मा: अडिश्नल कमिश्नर, आयकर विभाग। हिन्दी के युवा लेखक हैं। मुम्बई में रहते हैं। कथाकार को उनकी कहानी 'दुश्मन मेमना' के लिए वर्ष 2012 के 'रमाकान्त स्मृति' सम्मान से नवाज़ा गया है। अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद भी करते हैं।
सभी चित्र: अनुपम रॉय: अम्बेडकर युनिवर्सिटी, दिल्ली से चित्रकारी में एम.ए. कर रहे हैं। शौकिया चित्रकार हैं।